Poonam Shodh Rachna (ISSN 2456-5563)
(A multidisciplinary, peer reviewed and refereed Journal)
Vol.3, Issue.VIII, August 2024, Pc : PSR-2408008

देवी भागवत महापुराण के आधार पर दर्शन के तत्त्व का परिशीलन
देवी भागवत में दर्शन के तत्त्व

अनन्त कुमार पाण्डेय, शोधार्थी, संस्कृत विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail-anantpandey40@gmail.com

यह संसार, जिसे हम चाक्षुष-प्रत्यक्ष करते हैं, जिसके विविध रूपों का दर्शन कर आनन्दित होते हैं, जिसमें उपलब्ध ऐश्वर्यों का भोगकर सुखी होते हैं, वह आया कहाँ से? कैसे बना? किसने बनाया? यदि यह देवेंत है तो नित्य क्यों नहीं? इत्यादि जिज्ञासायें मानव-मन में उत्पन्न होती है। हमारे मनीषियों ने बहुत ही गम्भीर रूप में इस विषय पर चिन्तन-मनन किया है। भारतीय षड्दर्शन प्रसिद्ध है। इन सभी मार्ग के दार्षनिकों ने अपने-अपने अनुसार चिन्तन करके विचारों को प्रस्तुत किये हैं ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भ और नासदीयसूक्त के मंत्र इन्हीं भावों को व्यक्त करते हैं। ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार परमात्मा ने जगत् की सृष्टि का संकल्प किया और सर्वप्रथम द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक को उत्पन्न किया। लोकों की रक्षा के लिए जल आदि सूक्ष्म महाभूतों से हिरण्यमय पुरुष को निकालकर उसे समस्त अंगों एवं उपांगों से युक्त किया। हिरण्यमय पुरुष से संकल्प रूप किया। उससे मुखछिद्र प्रकट हुआ। मुख से वाक्, वाक् से अग्निय नासिकारन्ध्र और उससे प्राण, प्राण से प्राणवायु, तेजरन्ध्र से नेत्रेन्द्रिय और उससे आदित्यय श्रोत्रछिद्र उससे श्रोत्रेन्द्रियय उससे दिशायें प्रकट हुई, फिर त्वचा और त्वचा से लोम हुए लोमों से औषधि, हृदय से मनय मन से चन्द्रमाय नाभि, नाभि से अपानवायु, अपानवायु से मृत्यु देवता, फिर लिंग उत्पन्न हुआ। लिंग से वीर्य, वीर्य से जल उत्पन्न हुआ।[1]

परमात्मा द्वारा रचे गये वे समस्त इन्द्रियों के अधिष्ठाता अग्नि आदि सब देवता संसार रूपी इस महान् समुद्र में आ पड़े। अर्थात् हिरण्यगर्भ पुरुष के शरीर से उत्पन्न होने के बाद उनको कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं मिला, जिससे वे उस समष्टि शरीर में ही रहे। तब परमात्मा ने उस देवसमूह को भूख-प्यास से युक्त कर दिया। अतः वे भूख-प्यास से पीड़ित होकर परमात्मा से बोले कि हमारे लिए एक ऐसे स्थान की व्यवस्था कीजिये, जिसमें रहकर हमलोग अन्न-भक्षण कर सकें।

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्राप्ततंस्तम
शनाया पिपासाभ्यामन्ववार्ण यत् ता एनमब्रुवन्नायतनं
नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति।[2]

परमात्मा ने उन देवताओं के लिए गौ, अश्व, मनुष्य सबकी रचना की। तब परमेश्वर ने कहा - तुमलोग अपने-अपने योग्य स्थान देखकर इस मानवशरीर में प्रवेश कर जाओ। अग्निदेवता वागिन्द्रिय बनकर मुख में, वायु प्राण बनकर नासिका-छिद्रों में, आदित्य चक्षु में, दिशाओं में अभिमानी देवता, श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानों में प्रवेष कर गये। औषधि और वनस्पतियों के

अभिमानी देवता लोम बनकर त्वचा केय चन्द्रमा बनकर हृदय में, मृत्यु देवता अपान बनकर नाभिप्रदेश में और जलाभिमानी देवता वीर्य बनकर लिंग में प्रवेश कर गये।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्रविशद्वायुः प्राणो मूला नासिके
प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्। श्रोत्रं भूत्वा कर्णो
प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रः
मनो भूत्वा हृदयं प्रविषन्मृत्योरपानो भूत्वा नाभिं
प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।[3]

तब भूख और प्यास ने परमात्मा से स्थान माँगा।

परमात्मा ने कहा कि मैं तुम दोनों को इन देवताओं के स्थान में भाग देता हूँ। सृष्टि के आरम्भ में ही परमात्मा ने ऐसा नियम बना दिया था, इसीलिए जब जिस देवता को देने के लिए इन्द्रियों द्वारा विषयभोग किये जाते हैं तो उस देवता के भाग में क्षुधा और पिपासा हिस्सेदार होती है।[4]

लोक और लोकपालों की रचना के बाद परमात्मा ने पंचमहाभूतों को तपाया। उससे अन्न की उत्पत्ति हुई। मनुष्य ने अन्न को अपानवायु के द्वारा मुखद्वार से शरीर में प्रवेश कराने की चेष्टा की और सफल हुआ।

तदपानेनजिघृण्सत्तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुर्वा एष यद्वायुः।[5]

सम्पूर्ण लोक एवं प्राणी आदि की सृष्टि के बाद परमात्मा ने सोचा कि मेरे बिना पुरुष कैसे रह सकता है ? अर्थात् इस जीवात्मा के साथ मेरा सहयोग नहीं रहेगा तो यह अकेला कैसे ठहर सकेगा। अर्थात् इस जीवात्मा के साथ मेरा सहयोग नही रहेगा तो अकेला कैसे ठहर सकेगा। फिर निश्चय करके ब्रह्मरन्ध्र के माध्यम से मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हो गया।

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत।
सैषा विद्वतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दम्।[6]

प्रश्नोपनिषद् में भी प्रजापति (ब्रह्म) को ही जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण बतलाया गया है। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होकर ब्रह्म ने तपस्या की। उन्होंने रयि और प्राण दो तत्त्वों को उत्पन्न किया। आदित्य सूर्य ही प्राण है और चन्द्रमा रयि है।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स
तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पाद्यते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे
बहुधा प्रजाः करिष्यत इति। आदित्यो ह वै प्राणों रयिरेव
चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्व यन्मूर्त चामूर्त
च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः।[7]

यह सूर्य हमें जीवनीषक्ति प्रदान करता है। यह चन्द्रमा ही 'रयि' है क्योंकि इसमें स्थूल तत्त्वों का पुष्ट करनेवाली भूततन्मात्राओं की ही अधिकता है। शरीर में जीवनीषक्ति का सम्बन्ध सूर्य से है और मांस, मेदा आदि स्थूल तत्त्वों का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। यह प्राणतत्त्व सबको धारण करनेवाला है। प्राण संस्कार रहित होने पर भी श्रेष्ठ ऋषि है। प्राण संस्कार रहित होने पर भी श्रेष्ठ ऋषि है। स्वभाव से शुद्ध है। यह समस्त विश्व का स्वामी है।

प्राण का ही स्वरूप वाणी, श्रोत्र, चक्षु आदि समस्त इन्द्रियों में और मन आदि अन्तःकरण की वृत्तियों में व्याप्त है। साधक प्रार्थना करता है कि प्राण! तू शरीर से उठकर बाहर न जा।

व्रात्यस्तवं प्राणैकर्षितरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः।।
या ते तनूर्वाधि प्रतिष्ठा या श्रोत्रे या च चक्षूषि।
या च मनसि सन्तता षिवा तां कुरुमोत्क्रमीः।।[8]

परमात्मा ने जब जगत्सृष्टि का संकल्प किया तो सबसे पहले प्राण को ही उत्पन्न किया। प्राण के बाद श्रद्धा, आकाष, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन इन्द्रिय, अन्न, वीर्य नाना कर्म एवं विभिन्न लोकों को उत्पन्न किया।[9]

उपर्युक्त औपनिषदिक उद्धरणों से स्पष्ट है कि यहाँ जगत् की उत्पत्ति परमात्मा से ही बतलायी गयी है। उसी निर्गुण, निराकार ब्रह्म ने स्वयं को विविध स्वरूपों में प्रकट किये। लेकिन यहाँ माया जैसे किसी तत्त्व का उल्लेख नहीं है। वेदान्त दर्शन में तो जगत् की सृष्ट का मूल कारण माया ही है। देवीभागवत में प्रायः अद्वैतवेदान्त के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया गया है। देवीभागवत में वर्णित सृष्टि क्रिया एवं पंचीकरण के वर्णन के पहले वेदान्त प्रतिपादित सृष्टि, प्रक्रिया एवं पंचीकरण को बतला देना उचित होगा, क्योंकि उसी के परिप्रेक्ष्य में शाक्तमत की मीमांसा उचित होगी। ब्रह्म स्वयं सृष्टिकर्ता नहीं है। हम अज्ञानवष उस पर जगत् को आरोपित कर देते हैं। हमें अज्ञान के कारण वह तुरीय ब्रह्म ह्न ष्टिगोचर नहीं होता। अज्ञान ही विभिन्न पदार्थो को आवृत्त कर लेता है अथवा दूसरे रूप में प्रकट करता है। ब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए गुरू अध्यारोपापवाद न्याय से वस्तु रूप ब्रह्म पर अवस्तु रूप जगत् का क्रमशः आरोप करता है तथा आरोपित अवस्तु को पुनः हटा लेता है। इसी अध्यारोप को सृष्टि और अपवाद को प्रलय की संज्ञा दी जाती है।

वेदान्तदर्शन में अज्ञान की उपाधि से युक्त आत्मा की तीन अवस्थायें कही गयी हैं- सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत। सुषुप्ति में कारण शरीर उपाधि होता है। इससे आनन्दमय कोश बनता है। स्वप्नावस्था में कारणशरीर और सूक्ष्मशरीर उपाधि होता है। इसमें तीन कोश होते हैं-विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय कोश। इन तीनों कोशों से सूक्ष्मशरीर बनता है। जाग्रत अवस्था में कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर उपाधि होते है। स्थूल शरीर को अन्नमयकोश कहते हैं। ईश्वर और जीव की उपर्युक्त तीन अवस्थायें होती हैं, क्योंकि ये अज्ञान की उपाधि से युक्त होते हैं। स्वप्नावस्था में ईश्वर ही हिरण्यमय, सूत्रात्मा तथा ब्रह्मा कहलाता है तथा जाग्रत अवस्था में विराट् एवं वैश्वानर कहा जाता है। जीव सुषुप्ति काल में, प्राज्ञ स्वप्न में तैजस् तथा जागरण में विष्व कहलाता है।

तमः प्रधान विक्षेप शक्ति से युक्त अज्ञानोपहित चौतन्य से सूक्ष्मतन्मात्र रूप आकाष की उत्पत्ति हुई। आकाष से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई।

तमः प्रधानविक्षेपषक्तिमदज्ञानोपहितचौतन्यादाकाष
आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते।[10]

इसमें श्रुति भी प्रमाण है -

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत।

इन आकाशादि में जड़ता के आधिक्य होने से इनकी उत्पत्ति में तम की प्रधानता मानी जाती है, क्योंकि कारण का प्रभाव कार्य पर होता है। इस सूक्ष्म शरीर के सत्रह अवयव होते हैं - पंचज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, पंचकर्मेन्द्रिय और पंचवायु। पंचज्ञानेन्द्रियाँ हैं - श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा और घ्राण। अन्तःकरण की निश्चयात्मिका वृत्ति को बुद्धि तथा अन्तःकरण की संकल्प-विकल्पात्मिका वृत्ति को मन कहते है। अहंकार का इन्हीं दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है। ये पंचज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सूक्ष्म भूतों के सात्विक अंष के कार्यफल हैं, क्योंकि ये प्रकाषक हैं अर्थात् पदार्थो का ज्ञान कराते हैं। सूक्ष्मभूत तीन कोषों से युक्त हैं - विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय। बुद्धि और पंचज्ञानेन्द्रियों के मेल से विज्ञानमय कोष बनता है।

विज्ञानमय कोष से युक्त चौतन्य सुख-दु:खादि का भोग करता है। अत: वह जीव कहलाता है। मन इन्द्रियों के साथ मिलकर मनोमय कोष बनाता है।

इसी प्रकार पंच कर्मेन्द्रियाँ हैं - वाक्, पाणि, पाद, पायु उपस्थ। ये कर्मेन्द्रियाँ आकाशादि सूक्ष्मभूतों के असम्मिलित रजोगुण से क्रमश: अलग-अलग उत्पन्न होते हैं। वायु भी पाँच प्रकार का है- प्राण, अपान, ज्ञान, उदान, समान। प्राणवायु नासिका के अग्रभाग में होता है जिससे श्वसन क्रिया होती है। शरीर के नीचे की ओर चलनेवाली वायु अपान है। सब ओर गमन करनेवाला सम्पूर्ण शरीर में वर्तमान रहनेवाला वायु व्यान है। ऊपर की ओर चलनेवाला कण्ठस्थानीय वायु उदान है। भोजनादि को पचानेवाला वायु समान है। ये प्राणादि वायु कर्मेन्द्रियों से मिलकर विज्ञामय कोष बनाते हैं। ये तीनों विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय कोश क्रमश: ज्ञानशक्ति सम्पन्न, इच्छाशक्ति सम्पन्न और क्रियाशक्ति सम्पन्न हैं। इस कोषत्रय से सूक्ष्म शरीर बनता है। समस्त पदार्थो का सूक्ष्म शरीर एक ही है। अर्थात् यह सूक्ष्म शरीर एकत्व ज्ञान का विषय होने से वन और जलाशय के समान एक तथा व्यष्टि रूप से वृक्ष और जलबिन्दुक की तरह अनेक होता है। इन सूक्ष्म भूतों से समष्टि अज्ञान से उपहित चौतन्य सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ और प्राण कहलाता है। व्यष्टि ज्ञान से उपहित चौतन्य अन्त:करण की तेजोमय उपाधि से युक्त होने के कारण यह सूक्ष्म शरीर या विज्ञानमयादि कोषत्रय कहलाता है। ये सूत्रात्मा और तेजस् स्वप्नावस्था में अन्त:करण की वृत्तियों द्वारा सूक्ष्म विषयों का भोग करते हैं।

अब दूसरा है स्थूल शरीर। इसकी उत्पत्ति पंचीकरण तत्त्वों से होती है। सबसे प्रचलित मत यह है कि आत्मा या ब्रह्म से पहले पाँच सूक्ष्मभूतों आकाष, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी की उत्पत्ति होती है। इन पाँचों का पुन: पाँच तरह से संयोग होता है। इससे पाँच तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। अब पाँच भूतों का संयोग इस अनुपात में होता है कि आधा में आकाष तत्त्व और शेष आधा में अन्य चारों तत्त्व होते हैं। इस क्रम को पंचीकरण कहा गया है। वेदान्तसार में लिखा -

स्थूलभूतानि पंचौंतानि, पंचकरणं त्वाकाशादि
पंचस्वेकैकं द्विधासमं विभज्य तेषु दशसु भागेषु
प्रायमिकान् पंचभागान् प्रत्येकं चतुर्धा समं विभज्यत
तेषां चतुर्णा भागानां स्वस्वद्वितीयार्ध भाग-परित्यागेन
भागान्तरेषु संयोजनम्। तदुक्तम -
द्विधा विधायचैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुन:।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्यो जनात् पंच पंच ते।।

(वेदान्तसार)

आत्मा या ब्रह्म से पहले सूक्ष्म भूतों का इस सूक्ष्म क्रम से आविर्भाव होता है- आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी। इन पाँचों का पुन: पाँच प्रकार से संयोग होता है। जब पाँच सूक्ष्मभूतों का संयोग इस अनुपात में होता है कि आधा में आकाश और शेष आधा में अन्य चारों तत्त्व होते है। यह पंचीकरण काल्पनिक नहीं है, इसमें श्रुतियाँ भी प्रमाण है।

इन पंचौंत महाभूतों से भू:, भुव:, स्व: मह:, जन: तप: और सत्यम् क्रमश: ऊपर-ऊपर की ओर विद्यमान इन लोकों की ओर अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल इन नीचे-नीचे की ओर लोकों की उत्पत्ति होती है। इन दोनों लोकों के मध्य चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति होती है - जरायुज, अण्डज, उद्भिज और स्वेदज।

इन पंचीकृत भूतों की भी अपनी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। ज्योंही 'तत्त्वमसि' ऐसा ज्ञान हो जाता है कि अन्य सांसारिक पदार्थो की भाँति स्थूल शरीरादि भी नष्ट हो जाते है। प्रलयावस्था में भूत अपने कारणभूत अपंचीकृत महाभूतों में लीन हो जाते है।

देवीभागवत में ब्रह्मा नारद को बतलाते हैं कि सभी प्राणियों में जो चैतन्य विद्यमान है उसे ही परमात्मा समझें। तेजस्वरूप वे परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है तथा सदा विराजमान है। परम पुरुष तथा प्रेंति सर्वव्यापी है। यह प्रेंति और पुरुष दो तत्त्व तो सांख्यदर्षन के अनुसार हैं। देवीभागत के अनुसार सर्वदा अन्याय, एकरूप, चिदात्मा, निर्गुण तथा निर्मल उन दोनों (प्रें त, पुरुष) को एक ही शरीर में सम्मिलित मानना चाहिए। जो शक्ति है वही परमात्मा है, जो परमात्मा है वही शक्ति है।

चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम।
तेजः सर्वत्रगं नित्यं नाना भावेषु नारद।।
एकरूपौ चिदात्मनौ निर्गुणो निर्मलावुभौ
या शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता।।[11]

सृष्टि के विषय में कहा गया है कि जड़-चेतन यह सारा जगत् अहंकार से निर्मित है। यह अहंकार त्रिविध है- सात्त्विक, राजस और तामस्। अहंकार की तीन शक्तियाँ हैं - ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति। यह क्रमशः सत्त्व, रज और तम गुण से सम्बद्ध हैं। द्रव्य शक्ति से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये तन्मात्रायें उत्पन्न होती है। आकाष का गुण है शब्द, वायु का गुण है स्पर्ष, अग्नि का गुण है गन्ध। ये तन्मात्रायें अत्यन्त सूक्ष्म है। द्रव्यषक्ति से युक्त इन दष पंचमात्राओं तथा पंच गुणों से मिलकर तामस अहंकार की अनुवृत्ति से सृष्टि होती है। राजसी क्रियाषक्ति से श्रोत्र, त्वक्, रसना, नेत्र और नासिका ये पंच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुह्यांग - ये पाँच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती है। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान - ये पंचवायु हैं। ये पंद्रह (पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और पंचवायु) मिलकर होनेवाली सृष्टि राजसी सृष्टि कही जाती है। ये सभी साधन क्रियाषक्ति से सदायुक्त रहते हैं। इनके उपादान कारण को चित् अनुवृत्ति कहा जाता है।

दिशायें, वायु, सूर्य, वरूण और दोनों अश्विनीकुमार ज्ञानशक्ति से युक्त हैं और ये सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुए हैं। पाँचों इन्द्रियों के पाँच अधिष्ठातृ देवता है। इसी तरह बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय के चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र तथा क्षेत्रज्ञा- ये अधि देवता हैं। मनसहित इनकी संख्या पन्द्रह है। यह सात्त्विक अहंकार की सृष्टि है। स्थूल और सूक्ष्म परमात्मा के दो रूप होते हैं। उनमें ज्ञानरूप निराकार स्वरूप सबका कारण कहा गया है। साधक के ध्यान आदि कार्यो के लिए परमात्मा के स्थूल रूप की उपासना करनी चाहिए।

अब पंचीकरण की प्रक्रिया से जगत् की उत्पत्ति का क्रम बतलाया जा रहा है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन तन्मात्राओं और पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश पंचभूतों को मिलाकर परमात्मा ने पंचभूत मय देह की सृष्टि की। जल के दो अंष, अर्थ अवशिष्ट चार भूतों के दो-दो भाग करके उसमें से आधे भाग को पृथक् कर लें। शेष आधे अंश को चार प्रकार से अलग-अलग करके आधे भाग से रहित उन अंशों को मिला दें। रस तन्मात्र को आधे भाग जल में मिलाकर अवषिष्ट भूत तन्मात्रा के आधे चार भागों में मिश्रित कर दें। ऐसा करने से जब रसमय स्थूल जल हो जाय तब अन्य चार भूतों के पंचीकरण विभाग करें। उन पंचीकृत पंचभूतों में अधिष्ठानता के कारण उनके प्रतिबिम्ब रूप से जब चैतन्य अवषिष्ट हो जाता है तब पंचभूतात्मक शरीर में 'अहम्' भाव रूप संषय उत्पन्न हो जाता है। वह संषय स्पष्ट रूप से जब भासित होने लगता है तब उस स्थूल शरीर में देहाभिमान के साथ चैतन्य जाग्रत होने लगता है। वही दिव्य चैतन्य आदि नारायण भगवान्, परमात्मा आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

इसी पंचीकरण के सभी भूतों का विभाग स्पष्ट हो जाने पर आकाश आदि सभी पंचभूत पूर्वोक्त तन्मात्राओं के कारण अपने-अपने विशेष गुणों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं और एक गुण की वृद्धि से एक-एक भूत उत्पन्न हो जाता है।

आकाश का केवल एकमात्र गुण है - शब्द। वायु के शब्द, स्पर्ष, अग्नि के तीन गुण है - शब्द, स्पर्ष, रूप, जल के चार गुण है - शब्द, स्पर्ष, रूप, रसय पाँच गुण पृथिवी के है - शब्द, स्पर्ष, रूप, रस और गन्ध। इस प्रकार इन पंचौंत महाभूतों के योग से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है।[12]

सृष्टि-प्रक्रिया में सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों की विशेष भूमिका होती है। सृष्टि के क्रम में जब सत्त्वगुण बढ़ता है, उस समय बुद्धि धर्म में स्थित रहती है। इस समय वह रजोगुण या तमोगुण से उत्पन्न बाह्यविषयों का चिन्तन नहीं करती है। उस समय बुद्धि सत्त्वगुण से उत्पन्न होनेवाले कार्य को अपनाती है। इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्यो में नहीं फँसती। बुद्धि बिना प्रयास के ही धर्म तथा यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त हो जाती है। मोक्ष की अभिलाषा से मनुष्य उस समय सात्त्विक पदार्थो के योग में प्रवृत्त रहता है। वह राजसी भावों में लिप्त नहीं होता, तब भला वह तमोगुणी कार्यो में क्यों लगेगा ? इस प्रकार पहले रजोगुण को जीतकर वह तमोगुण को पराजित करता है। उस समय एकमात्र सत्त्वगुण ही स्थित रहता है। जब मनुष्य के मन में रजोगुण की वृद्धि होती है तब वह सनातन धर्म को त्यागकर राजसी वृत्ति के वषीभूत होकर विपरीत धर्माचरण करने लगता है। रजोगुण बढ़ने से धन की वृद्धि होती है और भोग भी राजसी हो जाता है। उस दशा में सत्व गुण दूर चला जाता है और उससे तमोगुण भी दब जाता है। जब तमोगुण की वृद्धि होती है और वह उत्कट हो जाता है तब वेद तथा धर्मशास्त्र में विश्वास नहीं रह जाता। उस समय मनुष्य तामसी श्रद्धा प्राप्त करके धन का दुरूपयोग करता है। सबसे द्रोह करने लगता है तथा उसे शान्ति नहीं मिलती। वह क्रोधी, दुर्बुद्धि तथा दुष्ट मनुष्य सत्त्व तथा रजोगुण को दबाकर अनेक विध तामसिक विचारों में लीन हो जाता है। वह स्वेच्छाचारिता करने लगता है। किसी भी प्राणी में सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहता, अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक दूसरे के आश्रयीभूत रहते हैं। श्रेष्ठ रजोगुण के बिना सत्त्वगुण और सत्त्वगुण के बिना रजोगुण कदापि नहीं रह सकता। इसी प्रकार तमोगुण के बिना ये दोनों गुण नहीं रह सकते। इस प्रकार ये गुण परस्पर स्थित रहते हैं। सत्त्वगुण तथा रजोगुण बिना तमोगुण नहीं रहता क्योंकि इन मिश्रित धर्मवाले सभी गुणों की स्थिति कार्य-कारण भाव से विभिन्न प्रकार की होती है।[13]

सृष्टि पंचीकरण की प्रक्रिया द्वारा होती है। यह प्रक्रिया वेदान्त मत के अनुसार ही है। अब जिज्ञासा है कि सृष्टिकर्ता कौन है ? देवीभागवत में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि सम्पूर्ण जगत् ह्रश्य है, परमपुरूष इसका द्रष्टा है। वह कर्ता नहीं है। वे सत-असत् रूपा देवी ही दृश्यमान जगत् की जननी है, वे स्वयं अकेले इस ब्रह्माण्ड की रचना करके परम पुरुष को आनन्दित करती है और उस परमपुरुष का मनोरंजन हो जाने के बाद भगवती शीघ्र ही सम्पूर्ण सृष्टि प्रपंच का संहार भी कर लेती है।

वे ब्रहमा, विष्णु और महेष तो निमित्त मात्र है। वह भगवती ही अपनी लीला से उनकी रचना करती हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यो में प्रवृत्त करती है। वह उनके अपने शक्ति अंष का आरोपण कर उन्हें बलवान् बनाती है। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के रूप में उन्हें अपनी शक्तियाँ दी है। अत: वे त्रिदेव इसी पराम्बा को सृजनादि करनेवाली जानकार उनका पूजन करते हैं।

न कालवषगा नित्यं पुरुषार्थवर्तिनी।
अकर्ता पुरुषो द्रष्टा ह्रष्यं सर्वमिदं जगत।।
ह्रश्यस्यजननी सैव देवी सदसदात्मिका।
पुरुषं रंजयत्येका ैत्वा ब्रह्माण्डनाटकम।।

रंजिते पुरुषे सर्व संहरव्यतिरंहसा।
तया निमित्त भूतास्ते ब्रह्मविष्णुः महेश्वरः।।
कल्पिताः स्व एव कार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी।
स्वांशं तेषु समारोप्य ेतास्ते बलवत्तरः।
दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरजा तथा।
ते तां ध्यायन्ति देवेशाः पूजयन्ति परां मुदा।।[14]

अर्थात् देवी ही सृष्टि का मूल है। पालन और संहार भी इसी के द्वारा किया जाता है। यह देवी ही जीवों के भीतर साक्षी रूप से विद्यमान रहती है, कर्त्री रूप से नहीं।

साऽहं सर्व जगत्सृष्ट्वा तदन्तः प्रवि शाम्यहम्।[15]

यह तो हुई जगत् की बात, नवम स्कन्ध में बतलाया गया है कि देवी का स्वरूप विस्तार कैसे हुआ। परमात्मा की सृजनाभिलाषात्मिका इच्छा के उदय होते ही वह मूल प्रेंति अर्थात् पराषक्ति साम्यावस्था मायोपहित ब्रह्मरूपिणी होकर प्रादुर्भूत हुई। तदनन्तर सृष्टिविषयक विभिन्न कार्य सम्पादन के लिए पांच शक्तिविग्रह उत्पन्न की। यद्यपि यह पंचषक्ति ही जगत् की सर्वप्रधान कहकर विख्यात है। इनमें 'दुर्गा' मंगलमयी तथा सब जीवों का आश्रय है।[16] दूसरी अवतार रूपाशक्ति का नाम पद्मा लक्ष्मी है। यह महाषक्तिरूपिणी ही स्वर्गधाम की स्वर्ग-लक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी और मर्त्यलोक में गृह लक्ष्मी है। जो इस अनन्तविश्व की समस्त विद्यास्वरूपा है, जो महाशक्ति परमात्मा मनुष्य के हृदयबुद्धि रूप से अवस्थित होकर महाग्रन्थ धारण सामर्थ्य, कविताशक्ति, स्मृतिशक्ति, प्रतिभाशक्ति कार्यकाल में तत्तद् विषय की स्फूर्ति प्रदान करती है, वह है सरस्वती। चौथी देवी सावित्री है। यह रूपा और गायत्री नाम से भी जानी जाती है। पाँचवीं शक्तिदेवी राधिका है। ये श्रीं ष्ण की वामांगी है।[17] इस प्रकार भगवती ने अपने स्वरूप का विस्तार किया। यह जगत् देवी द्वारा ही उत्पन्न किया गया है, वही पालिका और संहारिका भी है। प्रलयावस्था में सम्पूर्ण जगत् को अपने में समेट लेती है।

संदर्भ सूची

1. ऐतरेयोपनिषद, 1/1/1-4
2. ऐतरेयोपनिषद, 1/2/1
3. ऐतरेयोपनिषद, 1/2/4
4. ऐतरेयोपनिषद, 1/2/5
5. ऐतरेयोपनिषद, 1/3/10
6. ऐतरेयोपनिषद, 1/3/2
7. प्रश्नोपनिषद् 1/4-5
8. प्रश्नोपनिषद् 2/11-12
9. प्रश्नोपनिषद् 6/5
10. वेदान्तसार, व्याख्या-बदरीनाथ शुक्ल, पृ०-32
11. देवी भागवत 3/7/12-15
12. देवी भागवत 3/7/22-51
13. देवी भागवत 3/8/33-44
14. देवी भागवत 6/33//58-64

15. देवी भागवत 7/33/3 पूर्वार्द्ध
16. देवी भागवत 9/1/12-17
17. देवी भागवत 9/1/12-43